# कल्याणकों में ज्ञानकल्याणक

डॉ० कन्छेदी लाल जैन

**तीर्थंकर**—तीर्थ का अर्थ घाट होता है। सरोवर या नदी में घाट बने रहते हैं जिनके सहारे मनुष्य इनके बाहर सरलता से आ जा सकता है। उसी प्रकार "तीर्थं करोतीति तीर्थंकरः" अर्थात् जो घाट का काम करे वह तीर्थंकर कहलाता है। तीर्थंकर भगवान का अवलम्ब पाकर जीव संसार सिन्धु में न डूबकर, उससे पार हो जाता है। नदी या सरोवर के तीर्थ में तीन विशेषताएं होती हैं।

(१) शीतल स्थान होने से ताप शान्त होता है।

(२) शीतल जल से तृष्णा (प्यास) शान्त होती है।

(३) पानी के द्वारा कीचड़, मैल आदि की शुद्धि हो जाती है।

इसी प्रकार तीर्थंकर की वाणी का तीर्थ है, उस वाणी को प्रकट करने के कारण ही वे तीर्थंकर कहे जाते हैं। "तीर्थमागमः अर्थात् आगम ही तीर्थ है"। "सुद धम्मो एत्थ पुण्ण तित्थं" श्रुत और धर्म पुण्यतीर्थ हैं। घाट के समान जिनवाणी की तीर्थता के विषय में मूलाचार (७/७०) में लिखा है—

**दाहोवसमणतण्हाछेदो मलपंकपवहणं चेव।**
**तिहि कारणेहि जुत्तो तम्हा तं दव्वदो तित्थं॥**

(१) जिनवाणी रूपी तीर्थ में प्रवेश करने से भी संसार का सन्ताप शान्त होता है। (२) विषयों की तृष्णा शान्त होती है और (३) आत्मा के द्रव्यकर्म, भावकर्म आदि मैल दूर होते हैं इसलिए जिनवाणी द्रव्य तीर्थ है। जिनेन्द्र के द्वारा धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति होती है अतः वे धर्मतीर्थ कहलाते हैं। रत्नत्रय संयुक्त होने के कारण उन्हें भावतीर्थ भी कहा गया है।

त्रिलोकसार में लिखा है कि पुष्पदन्त तीर्थंकर के समय से लेकर वासुपूज्य के समय तक बीच-बीच में धर्म विच्छेद हुआ, इस धर्म विच्छेद के काल में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका का अभाव-सा हो गया था। यद्यपि धर्म का उच्छेद अवसर्पिणी के पंचम काल के अन्त में होता है परन्तु हुंडावसर्पिणी कालदोष के कारण चतुर्थ काल में भी उपर्युक्त सात तीर्थंकरों के तीर्थ काल में भी बीच-बीच में धर्मतीर्थ का विच्छेद हुआ, अन्य तीर्थंकरों के तीर्थकाल में ऐसा नहीं हुआ। विदेह क्षेत्र में तो धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कभी विच्छिन्न नहीं होती है। वहां तीर्थंकर होते रहते हैं। परन्तु कभी भी एक-दूसरे तीर्थंकर का परस्पर दर्शन नहीं होता, अर्थात् एक तीर्थंकर के मुक्त हुए बिना, दूसरा तीर्थंकर नहीं होता है।

**कल्याणक**—तीर्थंकर भक्ति में तीर्थंकरों को "पंचमहाकल्लायाणसंपण्णाणं" अर्थात् पांच महान कल्याणकों से सम्पन्न कहा गया है। चूंकि संसार पांच प्रकार के दुःखों/अकल्याणकों (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव) की आधारभूमि है, तीर्थंकरों के पुण्य जीवन के श्रवण, मनन तथा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष रूप पांच कल्याणकों की विधियां देखने से, पांच प्रकार के परावर्तन रूप पांच अकल्याणकों के छूटने का मार्ग मिलता है और अन्ततः यह जीव पंचमगति अर्थात् मोक्ष का पथिक बनता है। तीर्थंकारों के पांच कल्याणक, पंच परावर्तन रूप पांच अकल्याणकों के प्रतिपक्षी ही हैं। इन पांचों कल्याणकों के समय इन्द्रादि देव आकर महान पूजा, उत्सव, समारोह करते हैं। इन उत्सवों को पंचकल्याणक कहते हैं।

जीवों का सर्वाधिक हित भगवान के ज्ञानकल्याणक के बाद ही होता है, क्योंकि जीवों को धर्म का उपदेश तो उनके पूर्ण ज्ञानी होने के उपरान्त ही मिलता है, इस उपदेश से ही जीव अपने कल्याण का मार्ग प्राप्त करते हैं। यों तो प्रत्येक उत्सर्पिणी के तृतीय और अवसर्पिणी के चतुर्थ काल में भारत ऐरावत क्षेत्र से असंख्यात प्राणी मोक्ष प्राप्त करते हैं परन्तु तीर्थंकर चौबीस ही होते हैं। जिस जीव में लोक-कल्याण की ऐसी विशेष बलवती शुभ भावना उत्पन्न होती है कि इस संसार में मोह की अग्नि में अगणित जीव जल रहे हैं, मैं इन्हें ज्ञानामृत पिलाकर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख का मार्ग बताऊं और इनका उद्धार करूं, इस प्रकार की विश्वकल्याण की प्रबल भावना वाले भव्य प्राणी के ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है।

इस तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध होने में सोलह भावनाएं कारण हैं। परन्तु इन सोलह भावनाओं में दर्शन विशुद्धि भावना ही मुख्य है। दर्शन विशुद्धि भावना पूर्ण होने पर अन्य भावनाएं सहचरी के रूप में आ जाती हैं। किसी के दर्शन विशुद्धि के साथ पन्द्रह भावनाएं सहचरी होने से सोलह भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है, किसी के केवल दर्शन विशुद्धि मात्र एक भावना से ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो जाता है। किन्हीं के दर्शनविशुद्धि के साथ अन्य कुछ भावनाओं के कारण तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है।

भरत तथा ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थंकर पांच कल्याणक वाले ही होते हैं क्योंकि भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में होनहार तीर्थंकर देवगति या नरकगति से आते हैं, यद्यपि इस अवसर्पिणी में हुए भरत क्षेत्र सम्बन्धी सभी तीर्थंकर स्वर्गगति से आकर उत्पन्न हुए थे। चूंकि देवगति और नरकगति में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व रहता है, अतः वहां से आकर तीर्थंकर होने वाला मनुष्य पांच कल्याणक वाला तीर्थंकर होता है। स्वर्ग से आने वाले होनहार तीर्थंकर जीव की माला नहीं मुरझाती जबकि अन्य देवों की माला स्वर्गगति छूटने के छह माह पूर्व मुरझा जाती है। नरकगति से आने वाले होनहार तीर्थंकर के नरकायु के छह माह शेष रहने पर देव जाकर उसके उपसर्गों का निवारण करते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में सम्यग्दृष्टि जीव को ही होता है। भरत क्षेत्र में इस समय केवली या श्रुतकेवली का अभाव होने के कारण, तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं हो सकता है।

**ज्ञानकल्याणक की विशेष महिमा**—तीर्थंकर प्रकृति का वास्तविक उदय 'केवल ज्ञान' प्राप्त होने पर ही होता है, पूर्णज्ञानी होने के पूर्व छद्मस्थ काल में वे उपदेश नहीं देते हैं, जबकि जीवों का वास्तविक कल्याण तीर्थंकर के उपदेशों से ही होता है। यही कारण है कि णमोकार मंत्र में सर्वप्रथम "णमो अरिहन्ताणं" अरहन्तों को नमस्कार बोलते हैं, क्योंकि भगवान की अरिहन्त अवस्था से ही सर्वाधिक लोककल्याण उनकी दिव्यध्वनि द्वारा होता है। लोककल्याण की जिस प्रबल भावना के कारण तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया था वह अरहन्त अवस्था में ही साकार होती है इसलिए तीर्थंकर के ज्ञान कल्याणक का विशेष महत्त्व है।

**दो कल्याणक वाले तीर्थंकर**—विदेह क्षेत्र में जो तीर्थंकर होते हैं, उनमें कुछ पूर्वभव में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर चुकने वाले होते हैं, उनके तो पांचों कल्याणक होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी तीर्थंकर होते हैं जो उसी मनुष्य भव में गृहस्थ अवस्था में रहते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करते हैं। चरम शरीरी होने से उसी भव में मुक्त होता है अतः उनके तप, (दीक्षा)ज्ञान और मोक्ष ये तीन कल्याणक ही होते हैं। वहां कुछ ऐसे भी मनुष्य होते हैं जिन्होंने मुनि अवस्था धारण कर ली थी। उसके बाद मुनि अवस्था में ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया, दीक्षा लेकर वे तपस्या तो पहिले से ही कर रहे थे, ऐसी स्थिति में उनके ज्ञान और मोक्ष ये दो ही कल्याणक होते हैं। इस प्रकार ज्ञानकल्याणक प्रत्येक स्थिति में होता है और अधिक समय के लिए होता है। मोक्ष तो अल्प समय में हो जाता है। गर्भ, जन्म और तप ये तीन कल्याणक सभी तीर्थंकरों के नहीं होते हैं। इस दृष्टि से भी ज्ञानकल्याणक पूज्य एवं महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि अरहन्त अवस्था पाते ही तत्काल मोक्ष नहीं हो जाता परन्तु इस अवस्था में अनन्तसुख प्राप्त हो जाता है। इस दशा में क्षायिक ज्ञान, सम्यक्त्व, चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, इन नौ लब्धियों की प्राप्ति स्वयं में बड़ा अतिशय है। इन लब्धियों की प्राप्ति के कारण ज्ञानदान, अभयदान, बिना कवलाहार किए शरीर की स्वस्थता, देवों द्वारा पुष्पवृष्टि, दिव्य सिंहासन समवशरण आदि की उपलब्धि होती है।

तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध न करके अन्य मुक्त होने वाले असंख्यात मनुष्य हैं। वे सभी केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, उन्हें सामान्य केवली कहा जाता है। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके केवलज्ञान प्राप्त करने वाले ही तीर्थंकर कहलाते हैं।

तीर्थंकर केवली का तीर्थ प्रवर्तन काल आगामी तीर्थंकर होने तक चलता है। एक तीर्थंकर के काल में उसी क्षेत्र में दूसरे तीर्थंकर का सद्भाव नहीं होता। परन्तु सामान्य केवली एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक भी हो सकते हैं। यद्यपि सामान्य केवली भी उपदेश देते हैं लेकिन उनके लिए समोशरण की रचना नहीं होती है। उनके लिए गन्धकुटी की रचना होती है। उनके गणधर भी होते हैं। परन्तु जो सामान्य केवली केवल ज्ञान होते ही अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष चले जाते हैं, उनकी वाणी नहीं खिरती है अर्थात् उनका उपदेश नहीं होता है, इसी प्रकार सामान्य केवलियों में कोई मूक केवली भी होते हैं जो उपदेश नहीं देते और मुक्त हो जाते हैं।

**ज्ञान कल्याणक के चौबीस अतिशय**—तीर्थंकरों के जन्म के दस ही अतिशय होते हैं, ये अतिशय पंचकल्याणक वाले तीर्थंकरों के ही होते हैं। अन्य के अतिशय तीर्थंकर प्रकृति की अतिशयता व्यक्त करते हैं, इन अतिशयों से लोक के सुख तथा कल्याण का विशेष संबंध नहीं है जबकि केवलज्ञान संबंधी दस अतिशय तो ऐसे हैं जो सभी तीर्थंकरों के होते हैं, तीर्थंकरों की अतिशयता तो प्रकाशित करते ही हैं इसके साथ ही चारों ओर सौ-सौ योजन सुकाल होना, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ईति, भीति आदि क्लेशकारक परिस्थितियों का अभाव होना, उनके



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर से किसी प्राणी का घात न होना आदि ऐसे अतिशय हैं जो जीवों को सुखी करने वाले तथा दुःख निवारक हैं। तीर्थंकरों के ज्ञान-कल्याणक के समय देवों द्वारा किए गए चौदह अतिशय मिलाकर केवलज्ञान के चौबीस अतिशय हो जाते हैं। ये देवकृत अतिशय भी अन्यान्य जीवों के जीवन को सुखमय बना देते हैं। दिव्यध्वनि से तो अगणित जीवों का कल्याण होता ही है, इसके अतिरिक्त विरोधी प्राणियों का विरोधभाव लुप्त हो जाना, पृथ्वी का वातावरण सुखमय हो जाना भी सुख प्रदान करता है। आठ प्रातिहार्य भी केवलज्ञान के समय के हैं। इस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य रूप फल और उसका वास्तविक उदय ज्ञानकल्याणक के रूप में ही दिखाई देता है, इसलिए ज्ञान-कल्याणक सबसे महत्वपूर्ण तथा उत्कृष्ट कल्याणक है।

**समवशरण**—भगवान के समवशरण में बारह कोठे होते हैं जिनमें भव्य प्राणी देव, गणधर, मुनि, देवियां, चक्रवर्ती राजा तथा अन्य नरेश, विद्याधर और मनुष्य तथा स्त्रियां 'पशु-पक्षी आदि गर्भज, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच वैरभाव भूलकर प्रेम से बैठते हैं और हितकारी वाणी सुनते हैं।

**तत्र न मृत्युर्जन्म च विद्वेषो नैव मन्मथोत्मादः।**
**रोगान्तकबुभुक्षा पीडा च न विद्यते काचित्॥**

धर्मोपदेश हेतु निर्मित समोशरण में उपदेश के समय किसी स्त्री को प्रसूति नहीं होती, किसी जीव की मृत्यु नहीं होती, जीवों को कामोद्रेक, रोग, व्यसन, भूख, प्यास आदि शारीरिक पीड़ाएँ नहीं भी होती हैं।

समवशरण में गूंगे को वाणी, अन्धे को देखने की योग्यता, बहरे को सुनने की योग्यता, लूले-लंगड़े को चलने की योग्यता प्राप्त हो जाती है। रोगी वहां पहुंचते ही नीरोग, कोढ़ी सुन्दर, तथा विषैले जीव निर्विष हो जाते हैं। हृदय से वैर विरोध की भावना लुप्त हो जाती है। भगवान के प्रभामण्डल के प्रभाव से अन्धकार न रहने के कारण वहां रात्रि दिन का भेद नहीं रहता है अतः मध्य रात्रि में खिरने वाली वाणी का लाभ भी प्राणी लेते हैं। धर्मयुग के १६ सितम्बर, १९७३ के अंक में प्रभामण्डल तथा उसके दीप्तिचक्र के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ है जिससे प्रभामण्डल की वैज्ञानिकता पुष्ट होती है।

इस प्रकार ज्ञानकल्याणक के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए भगवान द्वारा उपदिष्ट जिनवाणी के प्रचार-प्रसार का विशेष आयोजन करना चाहिए।

**सिद्ध** : यह अनुभूतियों के परे का स्तर है। सिद्ध कार्य-कारण के स्तर से ऊपर उठ जाता है, कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। सिद्ध के बारे में कहा गया है कि वह न किसी से निर्मित होता है और न किसी का निर्माण करता है। चूंकि सिद्ध कर्मों के बन्धन से मुक्त होता है, इसलिए वह बाह्य वस्तुओं से भी पूर्णतः मुक्त हो जाता है। इसलिये उसे न सुख का अनुभव होता है, न दुःख का। सिद्ध अनन्त परमसुख में लीन रहता है।

सिद्धपद की प्राप्ति निर्वाण की प्राप्ति के समान है। और निर्वाण की स्थिति में, निषेधात्मक रूप में कहें तो, न कोई पीड़ा होती है, न सुख, न कोई कर्म, न शुभ-अशुभ ध्यान, न क्लेश, बाधा, मृत्यु, जन्म, अनुभूति, आपत्ति भ्रम, आश्चर्य, नींद, इच्छा तथा क्षुधा। स्पष्ट शब्दों में कहें तो इस अवस्था में पूर्ण अन्तःस्फूर्ति, ज्ञान, परमसुख, शक्ति, द्रव्यहीनता तथा सत्ता होती है। **अचारांग** में सिद्ध स्थिति का वर्णन इस प्रकार है: "जहां कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं, वहाँ से सभी आवाजें लौट आती हैं; वहाँ दिमाग भी नहीं पहुंच सकता। सिद्ध बिना शरीर, बिना पुनर्जन्म तथा द्रव्य-सम्पर्क से रहित होता है। वह न स्त्रीलिंग होता है, न पुल्लिगी और न ही नपुंसकलिंगी। वह देखता है, जानता है, परन्तु यह सब अतुलनीय है। सिद्ध की सत्ता निराकार होती है। वह निराबद्ध होता है।"

प्रो०—एस० गोपालन : जैन दर्शन की रूपरेखा के पंचम भाग 'नीतिशास्त्र' में वर्णित 'षड्स्तरीय संघ-व्यवस्था', पृ० १६५ से साभार उद्धृत



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org